Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
UGC Approved Journal No. 63726
Impact Factor:3.021 website: www.researchguru.net
Volume-12, Issue-1, June-2018

राजनैतिक नैतिकता : पुरालेखशास्त्रीय संदर्भ

VANDANA AGRAWAL

Assistant Professor, Dept. of History & Indian Culture, University of Rajasthan, Jaipur

Mob:-8619307805 Email Id:-vndna.11@gmail.com

सार(Abstract):-

राजनीति में नैतिकता का समावेश होना प्राचीन काल की ही नहीं वर्तमान समय की भी आवश्यकता रही है। यद्यपि हम इतिहास में बहुत से क्रूर शासकों से परिचित होते हैं किंतु सभी जानते हैं कि ऐसे शासक कभी लोकप्रियता एवं प्रसिद्धी हासिल नहीं कर पाये। महान् शासक वही हुए हैं जिन्होंने राजनैतिक नैतिकता को ध्यान में रखकर नीतियां बनाईं, इसका प्राचीन काल का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मौर्य सम्राट अशोक है। राजनैतिक नैतिकता संबंधी / नीतिशास्त्र संबंधी संदर्भों का ज्ञान हमें तत्कालीन साहित्य से भलीभांति हो जाता है किन्तु अभिलेखों को इस दृष्टि से एक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करना तथा इनके लिये 'पुरालेखशास्त्र' जैसे उपयुक्त शब्द का प्रयोग करना इस लेख का महत्वपूर्ण पक्ष है।इसका कारण यह है कि बहुत से विद्वानों ने माना है कि प्राचीन भारत में साहित्य के समानांतर अभिलेख भी एक शास्त्र के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं और प्राचीन काल के विभिन्न ज्ञात व अज्ञात पक्षों पर साहित्यिकता के साथ महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।इस लेख का उद्देश्य साहित्य के समानांतर अभिलेखों में भी प्राप्त हो रहे राजनैतिक नैतिकता के संदर्भों को प्रस्तुत करना है। वर्तमान राजनीति जहाँ नैतिकता से विहीन दृष्टिगत होती है वहाँ इस तरह के अध्ययन की सार्थकता स्वतः प्रमाणित हो जाती है। भारतीय प्रशासनिक सेवा व राज्य प्रशासनिक सेवाओं के पाठ्यक्रमों में नीतिशास्त्र को शामिल किया जाना इस प्रकार के अधिकाधिक संदर्भ खोजने की ओर प्रवृत्त करता है।

संकेतशब्द(Keywords):- पुरालेख, अभिलेख, नैतिकता, साहित्य, शास्त्र

राजनीति में नीति सम्बंधित नियम राज्य नियमों की दृष्टि से अनिवार्य थे, भारतीय शास्त्रीय परम्परा इस दृष्टि से सजग दिखाई देती है। कौटिल्य ने इन्हीं नियमों में मौर्य शासकों को बाँधा था, और यही परम्परा परवर्ती समय में शुक्र और सोमेश्वर के ग्रंथों में भी परिलक्षित होती है। यह साहित्यिक स्रोत पूर्णरूप से राजनीतिशास्त्र से जुड़े हुए थे, किंतु

आभिलेखिक साक्ष्य भी कहीं न कहीं इस अध्ययन में सहायक प्रतीत होते हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण हेतु सबसे महत्वपूर्ण , विश्वसनीय, प्रामाणिक साक्ष्य अभिलेखों को माना गया है। अभिलेखों के लिये 'पुरालेख' शब्द के प्रयोग को विद्वानों द्वारा उपयुक्त बताया गया है[1]।यद्यपि पुरालेख शब्द इसके 'प्राचीन लेख' अर्थ को अधिक स्पष्टता से ध्वनित करता है तथापि प्राचीन लेखों के लिए 'अभिलेख' शब्द ही अधिक प्रचलन में है। पुरालेखों को साहित्य की एक विधा के रूप में विद्वानों ने मान्यता दी है[2]| अतः इस लेख में 'पुरालेख' शब्द के साथ 'शास्त्र' शब्द को भी जोड़ा गया है। और यह इस प्रकार का प्रथम प्रयास नहीं है , विद्वानों द्वारा इस प्रकार का आग्रह पहले भी कई बार किया गया है। यह अपरिहार्य भी है क्योंकि 'पुरालेख' न केवल किसी क्षेत्र विशेष में विभिन्न भाषाओं के विकासात्मक अध्ययन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण प्राचीनकालीन सुरक्षित साहित्य हैं, अपितु कई कवियों एवं साहित्यकारों की काव्यात्मक एवं साहित्यिक कुशलता को जानने का एकमात्र स्रोत भी है जो कि अन्यत्र किसी भी साहित्य में अप्राप्य है, जैसे कि प्रयाग प्रशस्ति का लेखक हरिषेण , ऐहोल प्रशस्ति का रचनाकार रविकीर्ति आदि। तथा लिपियों के विकास के अध्ययन की दृष्टि से तो पुरालेखों (मुद्रालेखों व मुहरलेखों को भी शामिल करने पर) का एकाधिकार ही है। यद्यपि साहित्य की तुलना में पुरालेखों में स्थानाभाव की सीमा सदैव विद्यमान रहती है तथापि स्पष्टता , विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता की कसौटी पर पुरालेखों का पलड़ा भारी है।

पुरालेखों से प्राचीन भारतीय इतिहास के सभी विविध पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। राजनैतिक नैतिकता या नीतिशास्त्र के अनेकों संदर्भ पुरालेखों में प्राप्त होते हैं जो समसामयिक साहित्य से तुलनीय भी हैं। सर्वप्रथम अशोक के अभिलेख (प्रचलित शब्द का ही प्रयोग उचित होगा) इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। अशोक की नीतियों को जानने का एक मात्र स्रोत उसके अभिलेख ही हैं। और यदि प्राचीन भारतीय नीतिशास्त्र के आभिलेखिक साक्ष्यों की चर्चा होगी तो सर्वप्रथम एवं सर्वोपरि स्थान अशोक के अभिलेखों (जिन्हें अशोक 'धम्मलिपि' कहता है) का ही होगा।

भारतीय इतिहास का सबसे महान सम्राट अशोक है , इसका कारण है कि अशोक ने राजनीति में नैतिकता के नवीन और उत्कृष्ट प्रतिमान स्थापित किये। अशोक ने धर्मविजय को सच्चे अर्थो में धर्मविजय बनाया जो कि भारतीय धर्मशास्त्रों से सर्वथा भिन्न आदर्श था[3] तथा अशोक के बाद अन्य किसी शासक में ऐसा सामर्थ्य फिर भारतीय इतिहास ने नहीं देखा। श्रीराम गोयल अशोक की धर्मविजय को व्याख्यायित करते हुए लिखते हैं[4] कि अशोक की धर्म विजय के दो पक्ष थे- एक निषेधात्मक जिसमें आक्रामक सैनिकवाद को त्यागने और शस्त्र

प्रयोग के समय भी सहनशीलता व संयम से काम लेने की भावना निहित थी और दूसरा सकारात्मक पक्ष जिसमें द्वितीय शिलालेख [5], सप्तम स्तम्भ लेख[6] व रानी के लेख[7] आदि में परिगणित जनहित के कार्यों को करने एवं धर्म प्रचार के लिये दूत भेजने पर बल दिया गया था। वर्तमान में जहाँ देशों का रक्षात्मक व्ययों में निरंतर वृद्धि हो रही है , नये नये शस्त्रों को प्राप्त करने तथा परिक्षण करने की होड़ मची हुई है , युद्ध की आशंकाओं से विश्व ग्रसित है वहाँ अशोक द्वारा स्थापित ये प्रतिमान अत्यंत प्रासंगिक हैं।

प्रथम पृथक धौली शिलालेख[8] में अशोक कहता है कि 'सब मनुष्य मेरी प्रजा (संतान) हैं।'[9]इसी प्रकार द्वितीय पृथक धौली शिलालेख[10] में अधिक स्पष्ट रूप से कहता है कि 'उनको (मनुष्यों) को यह आश्वासन देना चाहिये जिससे कि वे ये जान जायें कि देवानांप्रिय हमारे लिये पिता के समान है।'[11]गोयल इस संदर्भ में लिखते हैं कि स्पष्टतः अशोक ने यह प्रयत्न किया था कि वह जनता का पालन अपनी संतान के समान करे। पर राजा और प्रजा के सम्बंध में यह विचार भारत में एक नई बात थी। [12] राजा और प्रजा के सम्बंध को पिता और पुत्र के समान तो कौटिल्य के *'अर्थशास्त्र'* में भी नहीं माना गया है। कौटिल्य के अनुसार प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है और प्रजा के हित में ही राजा का हित है, जो राजा को प्रिय हो उसे करने में राजा का हित नहीं है, अपितु प्रजा को जो प्रिय हो उसे करने में ही राजा का हित है ।[13] परंतु अशोक जिसे उचित समझता था उसी की इच्छा करता था और उसी को क्रियान्वित करना वह प्रजा के लिये हितकर मानता था। उसका यह आदर्श कौटिल्य के आदर्श से बिल्कुल उल्टा था।[14] अशोक का यह आदर्श बाद के शासकों के लिये 'राजनैतिक आदर्श' के रूप में स्थापित होता दिखाई देता है । सोमेश्वर भी मानसोल्लास के द्वितीय विंशति 'राज्यस्य स्थैर्यकरण विंशति' में प्रजा के पालन के निमित्त इसी प्रकार निर्देश देते हैं। अशोक के ये प्रतिमान वर्तमान भारतीय राजनितिक परिस्थितियों में ,जहाँ राजनेता स्वयं के हितों की पूर्ति हेतु जनता के हितों की बलि चढ़ा देते हैं, अनुकरणीय एवं प्रासंगिक हैं।

अशोक के नैतिकता के प्रतिमानों पर तो एक सम्पूर्ण शोध कार्य किया जा सकता है । अतः इस लेख की आवश्यकता के अनुरूप मौर्यों के उत्तरवर्ती काल के भी समृद्ध अभिलेखों का उल्लेख अनिवार्य है।रूद्रदामा के जूनागढ़ अभिलेख[15] में रूद्रदामा द्वारा प्रजाकल्याण हेतु 'सुदर्शन' बांध का पुनर्निर्माण किये जाने का उल्लेख मिलता है जिसमें इस कार्य को पूरा करने के लिये रूद्रदामा ने अपनी प्रजा को किसी कर, बेगार तथा प्रणय से पीड़ित किए बिना अपने निजी कोष से विशाल धनराशि व्यय की।यह भी महत्वपूर्ण है कि यह कार्य रूद्रदामा ने अपने मंत्रियों- मतिसचिव एवं कर्मसचिव के विरोध करने पर भी प्रजा के सुख तथा भलाई के लिए किया था।[16]प्रजाकल्याण का यह एक उत्कृष्ट एवं अनुकरणीय उदाहरण है।

इसी प्रकार समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति[17] में एक आदर्श शासक के गुणों का वर्णन किया गया है तथा समुद्रगुप्त को सर्वगुणसंपन्न शासक घोषित किया गया है। इस लेख की पंद्रहवीं पंक्ति में समुद्रगुप्त को 'वैदुष्यं तत्व-भेदि प्रशम'[18] अर्थात् 'जिसकी विद्वत्ता तत्वभेदि (मर्मस्पर्शिनी) है' कहा गया है । आगे 25वीं एवं 26वीं पक्तियों में कहा गया है -' भक्तयवनति-मात्र-ग्राह्य-मृदुहृदयस्यानुकम्पावतो-नेक-गो-शतसहस्र-प्रदायिन[:] [कृप]ण-दीनानाथातुर-जनोद्धरण- स(म)न्त्रदीक्षाभ्युपगत-मनसः समिद्धस्य विग्रहवतो लोकानुग्रहस्य ..' [19] इन पंक्तियों का तात्पर्य यह हुआ कि प्राचीन काल में सर्वगुणसंपन्न शासक वह होता था जो न केवल शूरवीर हो अपितु विद्वान हो,जिसका हृदय मृदु और कृपालु हो,जो दानकर्त्ता हो, जिसका मन दुःखी , गरीब, अनाथ लोगों के उद्धार में लगा रहता हो, जो लोककल्याण में रत हो । प्रयाग प्रशस्ति के ये उद्धरण कामंदक के 'नीतिसार' में बताये गये आदर्श शासक के गुणों से तुलनीय हैं। 'नीतिसार' में कामंदक का उल्लेख है- ' त्यागः सत्यं च शौर्यं च त्रय एते महागुणाः। प्राप्नोति हि गुणान् सर्वानेतैर्युक्तो नराधिपः॥'[20] अर्थात् त्याग, सत्य और शौर्य ये तीन महागुणों से युक्त राजा सर्वगुणसंपन्न होता है। इस प्रकार प्रयाग प्रशस्ति और समकालीन साहित्य नीतिसार में बताये आदर्श शासकों के गुणों में समानता है।

इसी तरह बंधुवर्मा (और कुमारगुप्त) के मालव संवत् 493 तथा 529 के मंदसौर अभिलेख[21] के पच्चीसवे श्लोक में आदर्श गोप्ता(प्रांतीय प्रशासनिक अधिकारी) के गुणों को बताते हुए दशपुर के गोप्ता विश्ववर्मा के गुणों का बखान किया गया है-

'दीनानुकंपन-परः कृपणार्त्त-वर्ग्ग-सान्त्व प्रदो(s)धिकदयालुरनाथ-नाथः।

कल्पद्रुमः प्रणयिनामभयं प्रदश्च भीतस्य यो जनपदस्य च बंधुरासीत् ॥'

अर्थात् [वह विश्ववर्मा] दीनों पर दया करने वाला, दरिद्र अतएव दुःखी लोगों को सांत्वना प्रदान करने वाला, असाधारण दयालु, अनाश्रितों को आश्रय देने वाला, मित्रों के लिए कल्पवृक्ष के समान, भयभीत लोगों को अभय- दान देने वाला, और प्रजाजनों में भातृ-भाव रखने वाला था। इसके साथ ही इस लेख के पाँचवें श्लोक से ज्ञात होता है कि अशोक की भांति कुमारगुप्त भी अपनी प्रजा को 'पुत्र'(सुत्वत) की तरह ही पालता है।

इसी क्रम में स्कंदगुप्त के प्रथम जूनागढ़ अभिलेख[22] में भी आठवें से दसवें श्लोक में सौराष्ट्र के गोप्ता पर्णदत्त के गुणों का एक आदर्श गोप्ता के गुणों के रूप में किया गया है-

स्यात्को(s)नुरूपो मतिमान्विनि(नी)तो मेधा- स्मृतिभ्यामनपेत-भावः।

सत्यार्जवौदार्य-नयोपपन्नो माधुर्य-दाक्षिण्य-यशोन्वितश्च ॥

भक्तो(ऽ)नुरक्तो नृ-[विशे]ष-युक्तः सर्व्वोपधाभिश्च विशुद्ध-बुद्धिः।

आनृण्य-भावोपगतान्तरात्माः (मा) सर्व्वस्य लोकस्य हिते प्रवृत्तः॥[23]

अर्थात् 'जो योग्य, बुद्धिमान, विनम्र, प्रज्ञा और स्मरणशक्तिसम्पन्न, सत्य, सरलता, उदारता और नीतिज्ञता से युक्त तथा मधुरता, सज्जनता और यशस्विता से सम्पन्न है, जो स्वामिभक्त, अनुरागी, पुरुषोचित गुणों से युक्त (अथवा विशिष्ट सहयोगियों से युक्त), सब प्रकार की परीक्षाओं से प्रमाणित विशुद्ध बुद्धिवाला, 'ऋण' उतारने की भावना में लगी अंतरात्मा वाला और समस्त प्रजा के कल्याण में तत्पर हो ।' इस अभिलेख से पता चलता है कि स्कंदगुप्त पश्चिमी प्रांत के योग्य शासक के लिये चिंता करता रहता था । इस प्रकार स्कंदगुप्त का यह लेख प्राचीन भारत के किसी भी राज्यशास्त्रीय साहित्य के समानांतर दिखाई देता है,जहाँ स्कंदगुप्त की अधिकारियों की नियुक्ति के पीछे छिपी हुई चिंता ही एक राजकीय आदर्श के रूप में प्रस्तुत है।

इन सब उद्धरणों से ज्ञात हो जाता है कि प्राचीन भारत में एक आदर्श शासक की कैसी अवधारणा थी। अन्य और भी अभिलेखों में इस प्रकार के उद्धरण प्राप्त किये जा सकते हैं। यही नहीं अभिलेख इस बात का भी संदर्भ प्रस्तुत करते हैं कि एक अच्छे शासक के होने से प्रजा पर कितना सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। स्कंदगुप्त के ही इसी जूनागढ़ अभिलेख के छठवें श्लोक में कहा गया है-

तस्मिन्नृपे शासति नैव कश्चिद्धर्म्मादपेतो मनुजः प्रजासु।

आर्त्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दण्डेन वा यो भृश-पीड़ितः स्यात् ॥[24]

अर्थात् 'उस नृप के शासन में प्रजा में कोई मनुष्य (ऐसा) नहीं है जो धर्मच्युत हुआ हो और न कोई ऐसा है जो आर्त्त, दरिद्र, व्यसनी, लोभी या दण्ड द्वारा अत्यधिक सताया हुआ हो।' इसका तात्पर्य है कि यदि शासक धर्म का पालन करता है, सर्वगुणसम्पन्न है, लोककल्याणी है तो प्रजा भी धर्म से विलग नहीं होती है तथा सभी नियमों का पालन करते हुए सभी सुखों को भोग करती है । आश्चर्यजनक रूप से प्रजा , राज्य को दुर्भिक्षों से बचाने के लिए भी राजा को नीतिपूर्ण , प्रजारंजक, लोककल्याणी होने की अनिवार्यता पर यदि प्राचीन काल में कौटिल्य चिंतित थे, तो आज भी प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने अपनी पुस्तक 'Poverty and Famines' में इसी प्रकार की चिंता व्यक्त की है।

अभिलेखों से ऐसे संदर्भ भी प्राप्त होते हैं कि यदि शासक सदाचारी न हो तो क्या होगा, जैसे कि ईशानवर्मा मौखरि के हड़हा पाषाण लेख[25] में कहा गया है - 'यस्योत्खात-कलि-

स्वभाव-चरितस्याचार-मार्ग्ग नृपा..' अर्थात् 'उसने अपने सदाचार के द्वारा कलियुग के स्वभाव को विनष्ट कर दिया था।' प्राचीन भारत में कलियुग को ऐसा काल कहा गया है जिसमें समस्त संसार में दुःख और क्लेश ही होगा , जहाँ सम्पूर्ण मानव जाति का नैतिक पतन हो जाएगा ,और यह ऐसा समय होगा जब प्रकृति भी नियमानुसार व्यवहार नहीं करेगी, धीरे-धीरे पृथ्वी पर जीवन विनाश की ओर आगे बढ़ता जायेगा। कुछ ऐसी ही परिस्थितियां वर्तमान में हमारे समक्ष उपस्थित हैं तथा अभिलेखों के ये संदर्भ बताते हैं कि यदि शासक सदाचारी हो तो कलियुग के इन प्रभावों को समाप्त या कम तो किया ही जा सकता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अभिलेखों में भी साहित्य के समानांतर नीतिशास्त्र सम्बंधी अनेकों संदर्भ भरे पड़े हैं आवश्यकता है उन पर और शोध हों और उन्हें सभी के समक्ष लाया जाये तथा भारतीय राजनीति उनका अनुकरण करे।

संदर्भ:-

1. डबराल, पार्थसारथी, *संस्कृत पुरालेखों के चार अध्याय* , नेशनल पब्लिशिंग हाउस ,नई दिल्ली , 2008
2. उपाध्याय, विभा, *संस्कृत साहित्य की एक विधा:पुरालेख*, सं., बी. आर. मणि, अरविन्द के. सिंह, रविंद्र कुमार, प्राच्यबोध , इण्डियन ऑर्कियोलजी एण्ड ट्रेडीशन ,2014, भाग 2 , पृष्ठ 432
3. भारतीय धर्मशास्त्रों के अनुसार धर्मविजय में विजित राज्यों को साम्राज्य में मिलाना वर्जित था , शस्त्र प्रयोग वर्जित नहीं था जबकि अशोक की धर्मविजय में नये प्रदेशों की विजय हेतु शस्त्र प्रयोग पूर्णतः वर्जित था
4. गोयल , श्रीराम , *प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह* , खण्ड -1 , राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी , जयपुर, 1982 , पृ. 68
5. पाण्डेय , राजबली , *अशोक के अभिलेख* , ज्ञानमण्डल प्रकाशन , वाराणसी, 1965, पृ.3
6. वही, पृ.148
7. वही, पृ.188
8. वही, पृ.89
9. *'सवे मुनिसे पजा ममा...'*
10. पाण्डेय, वही, पृ.
11. *'अथ पिता तथा देवानंपिये...'*
12. गोयल, श्रीराम, *प्राचीन भारत का इतिहास* (320 ई. तक), कुसुमाञ्जलि बुक वर्ल्ड , जोधपुर,2003, पृ.525
13. प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।
    नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥ - अर्थशास्त्र, 1.19
14. गोयल, वही
15. गोयल, *प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह* , पृ.32
16. वही, पृ.330
17. गुप्त,परमेश्वरीलाल, *प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,2013,खण्ड 2, पृ.7
18. वही, पृ.8
19. वही, पृ.9
20. नीतिसार 4.23
21. गुप्त, वही, पृ.102
22. वही, पृ.137
23. वही, पृ138
24. वही
25. गोयल,श्रीराम, *मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्ययुगीन अभिलेख,* कुसुमाञ्जलि प्रकाशन, मेरठ, 1987, पृ.56